बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

समग्र विकास के परिप्रेक्ष्य में गांधीय अर्थशास्त्र

डॉ. अमित रंजन सिंह
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर गांधी विचार विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

"पृथ्वी के पास हमारी ज़रूरतों के लिए पर्याप्त संसाधन हैं लेकिन हमारे लालच के लिए नहीं।"

- महात्मा गांधी

शोध सार

यह आलेख "समग्र विकास के परिप्रेक्ष्य में गांधीवादी अर्थशास्त्र" आधुनिक विकास की अवधारणाओं का समीक्षात्मक परीक्षण करते हुए एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। प्रचलित पश्चिमी पूंजीवादी मॉडल, जो भौतिक प्रगति, उपभोक्तावाद और औद्योगिकीकरण पर आधारित है, ने अल्पकालिक आर्थिक वृद्धि तो प्रदान की, किंतु इसके दुष्परिणाम—जैसे जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, सामाजिक असमानता और संसाधनों का असंतुलित दोहन—वैश्विक संकट का रूप ले चुके हैं। इस संदर्भ में गांधीवादी आर्थिक दृष्टिकोण को विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो विकास को केवल आर्थिक उत्पादन तक सीमित न मानकर सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ता है। गांधी का मॉडल आत्मनिर्भरता, स्वदेशी उत्पादन, लघु एवं कुटीर उद्योग, विकेंद्रीकरण, न्यायतंत्र और सर्वोदय पर आधारित है। उनका तर्क था कि वास्तविक विकास वह है, जिसमें संसाधनों का शोषण न होकर उनका नैतिक और संतुलित उपयोग हो। इसमें यह रेखांकित किया गया है कि पश्चिमी विकास प्रतिमान जहां उपभोग-वृद्धि और बाजार विस्तार को प्राथमिकता देता है, वहीं गांधीवादी दृष्टिकोण आत्मसंयम, सादगी और करुणा को केंद्रीय मानता है। यह भौतिक प्रगति के साथ-साथ आध्यात्मिक व सामाजिक उन्नति को भी समान महत्व देता है। इसके विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण के दौर में गांधीवादी अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता केवल नैतिक विकल्प के रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक समाधान के रूप में भी बढ़ी है। यह मॉडल गरीबी उन्मूलन, पर्यावरणीय संतुलन, बेरोजगारी निवारण और समानता स्थापित करने में सक्षम है। निष्कर्षतः, यह प्रतिपादित किया गया है कि सतत विकास केवल जीडीपी वृद्धि से नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण वितरण, सहयोग और अहिंसा पर आधारित संरचनात्मक परिवर्तनों से संभव है। गांधीवादी अर्थशास्त्र आधुनिक चुनौतियों के बीच समग्र, टिकाऊ और मानवीय विकास का एक विश्लेषणात्मक व व्यवहार्य खाका प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द ;-
गांधीवादी अर्थशास्त्र, समग्र विकास, आत्मनिर्भरता, सर्वोदय, स्वदेशी, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक न्याय, न्यायतंत्र, स्थायी विकास, लघु व कुटीर उद्योग

भूमिका :-

आदिमानव युग से लेकर वर्तमान युग तक विकास की प्रक्रिया विभिन्न स्वरूपों में निरन्तर चली आ रही है। विकास, परिवर्तन प्रकृति का नियम है। स्पेंसर के अनुसार विकास का मुख्य तथ्य था सरल समाजों से मिश्रित समाजों के विभिन्न स्तरों तक गति का होना। कुछ सरल समाजों के मिश्रण से मिथित समाजों की उत्पत्ति हुई। फिर मिश्रित समाजों के मिश्रण से दोहरे मिश्रित समाजों की उत्पत्ति हुई। इसके बाद दोहरे मिश्रित समाजों के मिश्रण से तिहरे मिश्रित समाज बने। एक सरल समाज में परिवार होते हैं, परिवारों का मिश्रित समाज से कुल (गोत्र) बने, कुलों संयुक्त दोहरे मिश्रित समाज कबीलों के रूप में एकत्रित हुए तथा कबीलों वाले मिश्रित समाज जैसे कि हमारा समाज है, वे समाज है जिनमें कबीलों को मिला कर राष्ट्र या राज्य बने है। आकार में वृद्धि के साथ संरचना में वृद्धि हुई तथा सदस्यों के अधिकार एवं व्यवसायों के अन्तर में वृद्धि हुई। संसार में प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ है तथा विभिन्न समाजों ने अपने तरीके से इन विकासों को समाहित किया है, उनका उत्तर दिया है, जो कि सामाजिक परिवर्तनों में परिलक्षित होता है। इन परिवर्तनों की गति कभी तीव्र रही है कभी मन्द। कभी-कभी ये परिवर्तन अति महत्वपूर्ण रहे हैं तो कभी बिल्कुल महत्वहीन। कुछ परिवर्तन आकस्मिक होते हैं, हमारी कल्पना से परे और कुछ ऐसे होते हैं जिसकी भविष्यवाणी संभव थी। कुछ से तालमेल बिठाना सरल है जब कि कुछ को सहज ही स्वीकारना कठिन है। कुछ सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट है एवं दृष्टिगत हैं, जबकि कुछ देखे नहीं जा सकते, उनका केवल अनुभव किया जा सकता है। हम अधिकतर परिवर्तनों की प्रक्रिया और परिणामों को जाने समझे बिना अवचेतन रूप से इनमें शामिल रहे हैं। जब कि कई बार इन परिवर्तनों को हमारी इच्छा के विरुद्ध हम पर थोपा गया है। कई बार हम परिवर्तनों के मूक साक्षी भी बने हैं। व्यवस्था के प्रति लगाव के कारण मानव मस्तिष्क इन परिवर्तनों के प्रति प्रारंभ में शंका से घिरा रहता है, परन्तु धीरे-धीरे उन्हें स्वीकार कर लेता है। इन्हीं बदलती परिघटनाओं के साथ कालक्रमानुसार विकास की विभिन्न अवधारणाएं प्रकाश में आयी। विकास की विचारधारा स्पष्ट करती है कि वर्तमान जटिल स्वरूप में आने से पूर्व समाज अनेक अवस्थाओं से गुजरा है।

समग्र विकास की अवधारणा: गांधीय बनाम पाश्चात्य धाराएं :-

किसी भी समाज, देश व विश्व में कोई भी सकारात्मक परिवर्तन जो जगत को बेहतरी की ओर ले जाता है, वही वास्तव में विकास है। विकास एक बहुआयामी पद (टर्म) है, विकास का अर्थ एक निश्चित स्थिति से आगे की ओर परिवर्तन, प्रगति और उन्नति से है और इस परिवर्तन, प्रगति और उन्नति की दिशा और दशा सही (सकारात्मक) होनी चाहिए, इसलिए अपेक्षा की जाती है कि विकास मात्र आर्थिक समृद्धि का नहीं मानवीय मूल्यों के विकास का भी सूचक बने। विकास की अवधारणा ही उत्थान और उत्कर्ष से उत्पन्न हुई है। परंतु, जब से भौतिकतावादी प्रवृत्ति हावी होने लगी है, तब से विकास का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। विज्ञान ने

मानव के विकास का मार्ग तो प्रशस्त किया है, पर इस विकास के साथ अमानवीय पक्ष भी जुड़ा हुआ है। मानव को सकारात्मक कार्य के प्रति अग्रसर होना चाहिए। अभ्युदय-समुत्कर्ष का चिंतन, विकास उत्थान है, विकास उत्कर्ष है, इसी तथ्य में इसकी मौलिक समग्रता निहित है। हमारी विकास की अवधारणा समुत्कर्ष की है। समुत्कर्ष अर्थात् सम्यक्, संतुलित उत्कर्ष। भौतिक विकास को अभ्युदय तथा आध्यात्मिक विकास को निःश्रेयस कहा जाता है। अभ्युदय तथा निःश्रेयस के संतुलित विकास को समुत्कर्ष कहते हैं। यह अवसाद नहीं उल्लास और उत्सव का कारक हो।

साधारण शब्दों में समग्र विकास से तात्पर्य समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि आयामों में कालक्रमानुसार सकारात्मक परिवर्तन से है, जो परस्पर अंतर्संबंधित सभी आयामों को संरक्षित व संवर्धित करते हुए समाज को एक आदर्श स्थिति प्रदान करता है।

विकास के सन्दर्भ में प्रमुख अवधारणाएं निम्नलिखित है :-

विकास की गांधीय और पाश्चात्य (Western) धाराओं में विभिन्नताएं हैं। गांधीय धारा में विकास को आत्म- संघटित और आत्मनिर्भरता की दृष्टि से देखा जाता है। इस पर भारतीय संस्कृति, सभ्यता, दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, जबकि पाश्चात्य धारा में विकास को अधिक प्रौद्योगिकीकृत और व्यापारिक दृष्टि से देखा जाता है। इन दोनों धाराओं में विकास की प्राथमिकताएं, मानवता के संबंध में धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण के आधार पर भिन्नताएं हैं।

विकास का अर्थ क्या है, अस्थायी (क्षणभंगुर) विकास या चिरंजीवी विकास, सतत और चिरंतन विकास ? विकास तो उत्थान का प्रतीक है, उसे तो उर्ध्वगामी होना चाहिए, फिर वह पतन का (हास) का कारक क्यों है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर पूर्ण संवेदनशीलता के साथ विचार किया जाना चाहिए। आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के मध्य (1850 के बाद से अब तक) पश्चिमी देशों ने विकास का जो मॉडल चुना, उससे आज वह सम्पूर्ण विश्व के लिए अस्तित्व का संकट खडा हो गया है। विनाशकारी विकास का यह पश्चिमी मॉडल 150 वर्षों के छोटे से कालखंड में ही पूरी दुनिया को विनाश के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया है।

सम्पूर्ण विश्व आज वैश्विक तापमान में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन आदि समस्याओं को झेल रहा है। परिणामस्वरूप ग्लेशियर और ध्रुवों पर उपलब्ध हिमराशी पिघल रही है। भूमंडल के बढ़ते तापमान से उत्पन्न आपदाओं (बाढ़, सुखा, आदि) की आवृति में लगातार वृद्धि हो रही हैं। विश्व में एक बड़ी जनसंख्या तटवर्ती क्षेत्रों में निवास करती है, जिनके लिए समुद्री जलस्तर में वृद्धि का अर्थ है- जीवन की प्रतिकूलता । दिन-प्रतिदिन बढ़ता निर्वनीकरण, जैव विविधता का ह्रास, जमीन उत्पादकता का ह्रास, जल उपलब्धता में कमी, जलापूर्ति की सुरक्षा आदि कारणों से समस्या और भी विकट रूप लेती जा रही है। औद्योगिकरण और नगरीकरण से वातावरण में प्रदूषण की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि पर्यावरण के संतुलन का खतरा मंडराने लगा है। यातायात के साधनों के अतिरिक्त बड़े-बड़े कारखाने आदि न केवल वायु प्रदूषण को बढ़ाते हैं अपितु जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण आदि के लिए भी उत्तरदायी हैं। कल-कारखानों से निकला रासायनिक अवशेष पानी के साथ बहकर नदियों में प्रक्षेपित हो जाता है, जिससे स्वच्छ जल प्रदूषित हो रहा है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य को पीने के लिए स्वच्छ जल भी नहीं मिल पाता है तथा साथ ही बहता जल प्रदुषण जलीय जंतुओं के अस्तित्व के लिए भी खतरे उत्पन्न कर रहा है। तेजी से बढ़ रहा प्राकृतिक असंतुलन हमें विनाश की ओर ले जाएगा। अंततः संपूर्ण मानव सभ्यता खतरे में पड़ जाएगी। अप्रत्याशित औद्योगिक और नगरीय प्रदूषण, रासायनिक कचरे का बढ़ता ढेर निस्तारण की समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। दुनिया ई-कचरे का ढेर बनती जा रही है, जो पर्यावरण को लंबे समय तक और गहरे तक प्रदूषित करने वाला है।

निश्चय ही ऐसे में सवाल उठता है कि ऐसा विकास जो प्रकृति के संतुलन का विनाश करता हो, उसे विकास कैसे माना जा सकता है। आज हम जिस विश्व का साक्षात्कार कर रहे हैं, उसमें विकास का प्रारूप संसाधनों के शोषण पर आधारित है, जिसके परिणामस्वरूप मानव समाज में संघर्ष और प्रतिस्पर्धा व्याप्त है। आज 'विकास' के नाम पर एक ऐसा असंतुलन पैदा हो रहा है, जो भविष्य में नए तनावों और टकरावों को जन्म दे सकता है। दूसरी ओर मानवीय चेतना बाजारवाद के प्रभाव में है और मानव एक उपभोक्ता की तरह इस्तेमाल हो रहा है। ऐसे में बढ़ती जनसंख्या और उसके साथ जुड़ी उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती मांग भी एक बड़ी समस्या है। विकसित देशों और विकासशील देशों के बीच हो रही बहस ने जनसंख्या और उपभोक्ता दर के बीच विरोधाभास को भी उजागर किया है।

भौतिकतावादी एवं उपभोगवादी पश्चिमी विकास की उपरोक्त आलोचना तार्किक है। पृथ्वी एक ऐसा पात्र है जिसमें से हम निकाल तो सकते हैं लेकिन उसमें कुछ डाल नहीं सकते हैं। विकास का पश्चिमी मॉडल असीमित उपभोग पर आधारित है, परन्तु आज की अधीरता और लालच के लिए हम आने वाली पीढियों के भविष्य से समझौता नहीं कर सकते। आधुनिकीकरण के प्रयास में किया जाने वाला विकास सही अर्थ में विनाश का द्योतक है, परन्तु गांधीय विकास की अवधारणा विनाश-रहित विकास, उत्थान या संवर्धन एवं परिवर्धन को पोषित करती है। यह प्रकृति का शोषण नहीं अपितु संसाधनों के दोहन के साथ-साथ पोषण की प्रक्रिया को पुनःस्थापित कराती है। पश्चिम की संस्कृति द्वारा पोषित आधुनिक विकास में भौतिकता प्रधान रही, जिसके कारण उसके विकास की अवधारणा को एकांगी एवं अधूरा ही कहा जा सकता है, वहीं गांधीय विकास की अवधारणा पर्यावरण को नष्ट किए बिना अनवरत विकास की संकल्पना है। प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं शांति एवं सह-अस्तित्व पर आधारित विकासात्मक कार्य मानव प्रजाति के अनुरूप हैं। ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से विचारणीय हो जाता है कि विकास का वास्तविक स्वरुप क्या हो? आखिर विकास के नाम पर अमर्यादित/अनियंत्रित अमानवीय प्रयत्नों को कब तक संरक्षण प्रदान किया जा सकता है?

गांधीय विकास की अवधारणा समग्र, समन्वित एवं संतुलित विकास की कल्पना है। यह न केवल प्रकृति और मानव बल्कि मानव और मानव के बिच भी परस्पर निर्भर एवं परस्पर आश्रित सहजीविता को प्रश्रय प्रदान करती है। विकास के लिए दोनों का सहयोग समन्वय अनिवार्य है। विकास भौतिक प्रगति, सुख-समृद्धि एवं अभ्युदय से जुड़ा रहा है। गांधीय विकास की अवधारणा उपभोगवादी नहीं अपितु अध्यात्मवादी है। गांधीय विकास की अवधारणा व्यष्टि के साथ समष्टि के कल्याण को सुनिश्चित करती है। इसमें भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय है, इस अवधारणा में विकास की मौलिक समग्रता निहित है। यह प्रकृति के साथ साम्य की परिकल्पना पर आधारित है। आधुनिकता के समर्थन में विकास की अवधारणा को संकुचित नहीं किया जा सकता है। गांधीय विकास की अवधारणा आत्मकेंद्रित

नहीं है, यह समाज केन्द्रित है, यह स्वावलंबी, स्वयंसिद्ध, स्वयंपूर्ण समाज निर्माण की प्रक्रिया है। इसके लिए समाज रचना और व्यवस्था नए सिरे से प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। जिससे समाज में संघर्ष नहीं समन्वय, सहयोग एवं पूरकता हो और जिसमे स्पर्धा नहीं सहृदयता, सहकार एवं सदाचार का प्रादुर्भाव हो। गांधीय विकास की अवधारणा सामूहिकता एवं सहकारिता का विचार है, जो केन्द्रित नहीं विकेन्द्रित विकास का पोषक है एवं 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना से युक्त है। गांधीय विकास की अवधारणा में संघर्ष, प्रतिद्वंदिता, प्रतिस्पर्धा, बहिष्कार नहीं, अपितु प्रेम, दया, करुणा युक्त सर्वोदयी भावना का समावेश है। इसलिए यह अपेक्षित है कि विकास संवेदनहीन नहीं संवेदनशील हो। गांधीय विकास की अवधारणा अपने ही कल्याण तक सीमित नहीं हैं। यह सर्वोदय पर आधारित विश्वकल्याण का विचार है। आज की विषम स्थिति में विकास के इस सत्य को समझा जाना चाहिए। इसे समझकर ही वह संभव हो सकेगा, ताकि विनाश पर उतारू अनियंत्रित भौतिक विकास की उच्छृंखल धारा को सही दिशा में नियोजित कर, समग्र विकास की राह प्रशस्त किया जा सके।

समग्र विकास के परिप्रेक्ष्य में गांधीय अर्थशास्त्र :-

समग्र विकास के परिप्रेक्ष्य में गांधीय अर्थशास्त्र सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सर्वोदय आदि अंतर्निहित तत्वों के साथ लघु व कुटीर उद्योग, स्वदेशी, आर्थिक विकेंद्रीकरण, न्यासिता के सिद्धांत व ग्रामवाद आदि स्तंभों पर आधारित लोककल्याणकारी अर्थशास्त्र है। उनके लिए व्यक्ति का विकास और समाज का विकास एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनका अंतिम लक्ष्य सर्वोदय था। सर्वोदय की अवधारणा न्याय के सिद्धांत को मानती है। सर्वोदय बाहरी और भीतरी परिवर्तन के लिए आंदोलन उत्पन्न करता है और सत्य, अहिंसा और साधनों की शुद्धता पर आधारित समतावादी सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रयास करता है। गांधीजी ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय की कीमत पर कभी समझौता नहीं किया; उनका अहिंसा का सिद्धांत केवल दार्शनिक सिद्धांत नहीं था बल्कि यह जीवन का नियम था। उन्होंने एक ऐसे भारत की कल्पना की थी जहां "करोड़ों मूक लोगों के हितों के साथ टकराव न करने वाले सभी हितों का ईमानदारी से सम्मान किया जाएगा, चाहे वे स्वदेशी हों या विदेशी।"1.

गांधी का लक्ष्य वह था, जिसे हम आज सतत विकास कह सकते हैं यानि शरीर, मन, आत्मा, प्रकृति एवं समाज का परस्पर संतुलित विकास। गांधीजी ने महसूस किया था कि मानव विकास केवल भौतिक या आर्थिक नहीं है, इसे नैतिक होना चाहिए, यह लोगों में समानता, स्वतंत्रता और गरिमा के मूल्यों को स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए, इसे लोगों को अन्याय के खिलाफ विरोध करने का साहस प्रदान करना चाहिए। विकेंद्रीकरण, समुदाय आधारित अर्थशास्त्र, आत्मनिर्भरता, हस्तशिल्प, ग्रामीण विकास और कम पूंजी गहन उपयुक्त प्रौद्योगिकी के उपयोग पर उनका जोर आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के लिए उनके दृष्टिकोण को दर्शाता है। जो अर्थशास्त्र "धार्मिक या आध्यात्मिक आचरण के रूपमें प्रस्तुत किये जाने योग्य" नहीं है, उसे उन्होंने त्याज्य बताया। 2.

गांधीवादी दर्शन की सर्वोत्कृष्टता यह है कि बाजार को नहीं बल्कि मानवीय मूल्यों को जीवन पर शासन करना चाहिए। गांधी विकास का मानवीय चेहरा प्रस्तुत करते हैं। "बी. एन. घोष के अनुसार समग्र विकास की गांधीवादी योजना के निम्नलिखित मूल उद्देश्य हैं- (1) क्षमता विस्तार के लिए मानव विकास (नैतिक विकास सहित), (2) शारीरिक और बौद्धिक श्रम के माध्यम से संतुलित तरीके से विकास (शरीर, दिमाग और आत्मा का विकास)), (3) सामाजिक न्याय, अधिकार और स्वतंत्रता के साथ विकास। यह सामाजिक एवं मानव विकास के सिद्धांत के अनुरूप है। (4) ग्रामीण विकास के माध्यम से आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन की प्राप्ति, (5) अतिरिक्त आय और रोजगार सृजन के माध्यम से गरीबी में कमी। "3.

महात्मा गांधी की अर्थव्यवस्था व अर्थशास्त्र के बारे में बहुत मौलिक सोच थी। यह सोच उस समय के प्रचलित विचारों की परवाह न कर सीधे-सीधे ऐसी नीतियों की मांग करती थी जिससे गरीबों को राहत मिले। साथ ही उन्होंने ऐसे सिद्धांत अपनाने को कहा जिनसे दुनिया में तनाव व हिंसा दूर हो तथा पर्यावरण को नुकसान न पहुंचें। गांधीजी के लिए विश्व शांति, संतोष व पर्यावरण की रक्षा सबसे महत्वपूर्ण थे। वह इसी के अनुकूल आर्थिक नीतियों की बात करते थे। महात्मा गांधी ने स्वीकार किया कि जिस अर्थविद्या से व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुंचती हो उसे मैं अनीतिमय और पापपूर्ण कहूंगा। उदाहरण के लिए जो नीति एक देश को दूसरे देश का शोषण करने की अनुमति देती है, वह अनैतिक है। जो मजदूरों को योग्य मेहनताना नहीं देते और उनके परिश्रम का शोषण करते हैं, उनसे वस्तुएं खरीदना या उन वस्तुओं का उपयोग करना पाप है। उन्होंने शोषण विहीन व्यवस्था की मांग रखी ताकि सबकी बुनियादी जरूरतें पूरी हों। उन्होंने कहा कि गरीब लोंगो को भी उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण मिले ताकि उनका शोषण न हो। गांधी ने लिखा, "मेरी राय में न केवल भारत की, बल्कि सारी दुनिया की अर्थ रचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव में तकलीफ न सहनी पड़े। दूसरे शब्दों में, हर एक को इतना काम अवश्य मिल जाना चाहिए कि वह अपने खाने- पहनने की जरूरतें पूरी कर सके। यह आदर्श तभी कार्यान्वित किया जा सकता है, जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहें। वह हर एक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होने चाहिए जिस तरह कि भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध है। किसी भी हालत में वे दूसरों के शोषण के लिए चलाए जाने वाले व्यापार का वाहन न बनें। किसी भी देश या समुदाय का उन पर एकाधिकार अन्यायपूर्ण होगा। हम आज न केवल अपने इस दुखी देश में, बल्कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी जो गरीबी देखते हैं उसका कारण इस सरल सिद्धांत की उपेक्षा है।" प्रायः यही माना जाता है कि निरंतर आर्थिक विकास व वृद्धि से ही दुनिया से गरीबी व अभाव दूर होगी, लेकिन महात्मा गांधी ने यह पहचान लिया था कि इस तरह के आर्थिक विकास के तहत गरीबी व विषमता बढ़ने की संभावना भी मौजूद रहती है। अतः उन्होंने आर्थिक विकास को नहीं, बल्कि गरीब आदमी की बुनियादी आवश्यकताओं को अपनी आर्थिक सोच का केंद्र बनाया। उन्होंने देश के नेताओं और नियोजकों से विशेष आग्रह किया कि जब तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ। जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा है, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोंगो

को स्वराज मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त? इस तरह महात्मा गांधी गरीब आदमी को आर्थिक चिंतन के केंद्र में ले आए।

द्रुतगामी तकनीकी बदलाव और मशीनीकरण उस समय की विचारधारा पर भी छाया हुआ था, क्योंकि इसी रास्ते पर चलकर यूरोप में समृद्धि आई थी, पर महात्मा गांधी ने इस विचारधारा को भी चुनौती दी और देश के गरीब किसान, दस्तकार और मजदूर के रोजगार और आजीविका को अंधाधुंध मशीनीकरण से बचाने के लिए उन्होंने जोर दिया। "उन्होंने कहा कि यंत्रों की ऊपरी विजय से चमत्कृत होने से मैं इनकार करता हूँ। और मारक यंत्रों के मैं एकदम खिलाफ हूँ, उसमें में किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन ऐसे सादे औजारों, साधनों या यंत्रों का, जो व्यक्ति की मेहनत को बचायें और झोंपड़ियों में रहने वाले लाखों-करोड़ों लोगों का बोझ कम करें, मैं ज़रूर स्वागत करूँगा। "4. वर्तमान झुकाव यह है कि कुछ लोगों के हाथ में खुब संपत्ति पहुंचाई जाए और जिन करोड़ों स्त्री-पुरूषों के मुंह से रोटी छीनी है उन बेचारों की जरा भी लापरवाह न की जाए। सच्ची योजना तो यह होगी कि भारत की संपूर्ण मानव शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए। मानव श्रम की परवाह न करने वाली कोई भी योजना न तो मुल्क में संतुलन कायम रख सकती है और न इंसानों को बराबरी का दर्जा दे सकती है। रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मजदूरी करना चाहिए, शरीर को (कमर को) झुकाना चाहिए, यह ईश्वर का कानून है। 5. इसी तरह गांधीजी ने कहा मनुष्य का लक्ष्य अपने उपभोग को निरंतर बढ़ाना नहीं अपितु सादगी के जीवन में संतोष प्राप्त करना है। यदि शक्तिशाली व अमीर लोग इस भावना में जिएं तो गरीबों के लिए संसाधन बचने की संभावना कहीं अधिक होगी। उनके शब्दों में, सच्ची सभ्यता का लक्षण संग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि सोच-समझकर और अपनी इच्छा से उसे उसे कम करना है। ज्यों-ज्यों हम अपरिग्रह की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों सच्चा सुख और संतोष बढ़ता जाता है, सेवा की शक्ति बढ़ती जाती है। त्याग की यह शक्ति हममें अचानक नहीं आएगी। पहले हमें ऐसी मनोवृत्ति पैदा करनी होगी कि हमें उन सुख- सुविधाओं का उपयोग नहीं करना है, जिनसे लाखों लोग वंचित हैं।

आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है। इस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं। तब उसके पास जो ज्यादा है, क्या वह उससे छीन लिया जाए? ऐसा करने के लिए हिंसा का आश्रय लेना पड़ेगा। और हिंसा के द्वारा ऐसा करना संभव हो, तो भी समाज को उससे कुछ फायदा होने वाला नहीं है। क्योंकि द्रव्य इकट्ठा करने की शक्ति रखने वाले एक आदमी की शक्ति को समाज खो बैठेगा। इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सकें उतनी अपनी आवश्यकताए पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाए। अगर वह प्रामाणिकता से संरक्षक बनेगा तो जो पैसा पैदा करेगा उसका सदव्यय भी करेगा। जब मनुष्य अपने-आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज के खातिर धन कमावेगा, समाज के कल्याण के लिए उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी। उसके साहस में भी अहिंसा होगी। इस प्रकार की कार्य-प्रणाली का आयोजन किया जाए, तो समाज में बगैर संघर्ष के मूक क्रान्ति पैदा हो सकती है। 6.

गांधीय अर्थशास्त्र : प्रासंगिकता व महत्वः-

भूमंडलीकरण के इस दौर में शहरों की चकाचौंध बढ़ती जा रही है, वहीं गाँवों की सादगी धूमिल होती प्रतीत हो रही है। गांधीजी के विचार हमें दोबारा वहीं गाँव की गलियों की सादगी और स्वच्छता में ले जाते हैं जहां गोधूलि बेला का आनंद मिलता है, जिसका अभाव आज की भागदौड़ वाली दुनिया में खलता है। भूमंडलीकरण के इस दौर में मानव के रहन सहन में बदलाव आया है। गांधीजी का कहना था कि "अर्थ पक्ष और नैतिक पक्ष एक दूसरे के पूरक है, अर्थात आर्थिक प्रतिस्पर्धा में हमें अपनी नैतिकता को भूलना नहीं चाहिए क्योंकि प्रकृति के नियम पूर्ण सत्य हैं, परंतु आर्थिक नियम समय व स्थान के साथ बदलते रहते हैं। सकल घरेलू उत्पाद तथा विकास संबंधी अन्य सुचिकांक तभी तक मायने रखते हैं जब तक उनसे जन-कल्याण का लक्ष्य पूरा हो सके। गांधी जी एक राष्ट्र, एक युवा, एक नागरिक, एक किसान, एक छात्र को शून्यता की वरीयता से अवगत कराते हैं, जिसका एकमात्र उद्देश्य मानवता की सभी परम सीमाओं को लांघकर एक आदर्श राष्ट्र का निर्माण करना है। "गांधी का कहना है कि धन का उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए, 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' के सिद्धांत द्वारा शासित किया जाना चाहिए, और सभी स्तरों पर असमानता के उद्भव पर अंकुश लगाना होगा। उनके अनुसार, किसी की वैध आवश्यकता से अधिक और उससे अधिक धन का संग्रह या भंडारण चोरी है।"7.

समकालीन आधुनिक भौतिकतावादी समाज में जहां असंतोष, असमानता और असंवेदनशीलता जैसी समस्याएं हावी हैं, वहां विकास से जुड़ी समस्याओं के संदर्भ में गांधीवादी चिंतन न सिर्फ प्रासंगिक है, बल्कि इसमें विशेष अभिरुचि भी ली जा रही है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को कुछ विद्वान सिर्फ पश्चिमीकरण मानते हुए इसकी आलोचना करते हैं। गांधी भी किसी देश की उन्नति के लिए उस देश की आथिक सामाजिक व्यवस्था को सिर्फ पश्चिमी सभ्यता में डालने के पक्षधर नहीं थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी सभ्यता मनुष्य को उपभोक्तावाद का रास्ता दिखा कर नैतिक पतन की ओर ले जाती है। गांधी ने पश्चिमी सभ्यता और आधुनिक सभ्यता को समवर्ती मानते हुए उसकी विस्तृत समीक्षा की। महात्मा गांधी के अनुसार, "मैं यह नहीं मानता की इच्छाओं को बढ़ाने और उनकी पूर्ति के साधन जुटाने से संसार अपने लक्ष्य की ओर एक कदम भी बढ़ पाएगा। आज की दुनिया में दूरी और समय के अंतराल को कम करने, भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने और उनकी तृप्ति के लिए धरती का कोना कोना छान मारने की अंधी दौड़ चल रही है, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। 8.

विकास के प्रचलित पाश्चात्य पूंजीवादी मॉडल, जो विशुद्ध शोषण की प्रक्रिया पर आधारित है, समाज में तथाकथित आधुनिकता व भौतिकतावाद के नाम पर प्रतिस्पर्धा, अलगाववाद, संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, बेरोजगारी, भुखमरी, आतंकवाद, पर्यावरणीय व सामरिक असंतुलन जैसी विसंगतियों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। यह समाज व विकास की परिभाषाओं, अर्थों, उद्देश्यों एवं उसमें समाविष्ट संरचनाओं के प्रतिकूल है। उपरोक्त समसामयिक मुद्दों, चुनौतियों के सरल, शांतिपूर्ण समाधान प्रस्तुत करने की विशेषताएं ही समग्र विकास के परिप्रेक्ष्य में गांधीय अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता व महत्व को बनाए रखती है।

1959 में अपनी भारत यात्रा के दौरान, मार्टिन लूथर किंग से एक संवाददाता सम्मेलन में एक प्रश्न पूछा गया था, "आज गांधी कहाँ हैं? हम उन्हें कहीं नहीं देखते हैं।" उनका जवाब था, "गांधी अपरिहार्य हैं। अगर मानवता को प्रगति करनी है तो गांधी जरूरी हैं। हम अपने जोखिम पर गांधी को नजरअंदाज कर सकते हैं।"

निष्कर्ष :-

विकास के संदर्भ में आर्थिक विकास ही पर्याप्त नहीं है, सामाजिक कल्याण भी आवश्यक है। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में यह भी चिंतन और विमर्श का विषय है कि किस तरह गरीबी उन्मूलन करना है किस तरह शिक्षा, स्वास्थ्य की आवश्यकताओं को पूरा करना है, किस तरह का आधारभूत संरचनात्मक विकास करना है। वर्तमान विश्व में विकास की जो अवधारणा और परिकल्पना प्रचलित हैं, उसे समझने और अनुकूल विकल्प प्रदान करने की जरुरत है। आर्थिक विकास जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण है मानव का विकास। इसके लिए विकास की अवधारणा बदलनी होगी। विकास को मात्र आर्थिक समृद्धि का नहीं, मानवीय मूल्यों के विकास का भी सूचक बनाना होगा। आज जिस प्रकार प्रकृति विनाश दृष्टिगत हो रहा है, उसे प्रमाणित होता है कि मानव अपने विकास के लिए गैर-मानवीय कार्य भी करने लगा है। विकास के प्रतिफल का दूषित नहीं परिशोधित होना अपेक्षित है। उनको त्याग देने पर, उपेक्षा कर देने पर भौतिक उत्कर्ष भी संभव नहीं है। इसलिए प्रकृति के प्रति हमारी सोच हमारा चिंतन सकारात्मक और रचनात्मक हो। इसके लिए वैसी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करना होगा, जो विवेकपूर्ण हो और जो पर्यावरण के अनुकूल हो। विकास ह्रास नहीं संचय का माध्यम हो, उपभोग नहीं महत्तम उपयोग का वाहक हो, जिसमें वर्तमान ही नहीं अपितु भविष्य का भी हित निहित हो। विकास को संहार के स्थान पर सृजन का, विकृति के स्थान पर स्वीकृति का, असंतुलन के स्थान पर संतुलन व समन्वय का, विस्थापन के स्थान पर बसाव/पुनर्वास का कारक होना चाहिए। गांधीय विकास की अवधारणा/विचार मनुष्य के सर्वांगीण अभ्युदय का समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. महात्मा गांधी, यंग इंडिया, 10 सितम्बर, 1931.
2. संपूर्ण गांधी वांग्मय, खण्ड 34, पृष्ठ संख्या-489.
3. बी.एन. घोष, गांधीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्थाः सिद्धांत, अभ्यास और नीति, एशगेट पब्लिशिंग लिमिटेड, एल्डरशॉट, हैम्पशायर, यूके, 2007.
4. महात्मा गांधी, यंग इंडिया, 17-6-1926.
5. महात्मा गांधी, मंगल-प्रभात, पृ. 41, प्रक. 1.
6. महात्मा गांधी, हरिजन सेवक, 24-8-1940.
7. महात्मा गांधी, हरिजन, 11 अगस्त, 1946. 8. महात्मा गांधी, यंग इंडिया, 1927.